

मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएं

डॉ. सुरेन्द्रकुमार

राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति

[मनुस्मृति-विषयक विभिन्न बिन्दुओं की
विभिन्न विद्वानों द्वारा तर्क-प्रमाणयुक्त समीक्षा]

लेखक एवं संकलन-सम्पादक

डॉ० सुरेन्द्रकुमार

आचार्य, एम.ए. संस्कृत-हिन्दी

(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुडगांव (हरियाणा)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

ISBN 978-81-7077-125-0

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानबद्द

4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006

दूरभाष : 23977216, 65360255

e-mail : ajayarya@vsnl.com

Website : www.vedicbooks.com

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश का गरिमापूर्ण 84वाँ वर्ष (1925-2009)

संस्करण : 2009

मूल्य : 150.00 रुपये

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

सम्पादकीय

‘राजर्षि मनु और उनकी मनुस्मृति’ शीर्षक यह मुक्ताहार पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे पर्याप्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके तीन कारण हैं—एक, इस विषय के विशेषज्ञ अनेक वैदिक विद्वानों के लेख इसमें ऐसे संकलित हैं जैसे किसी हार में मोतियाँ पिरोई होती हैं। उन विद्वानों के मनु और मनुस्मृति-सम्बन्धी चिन्तन से पाठक लाभान्वित हो सकेंगे। दूसरा, यह पुस्तक मनु और मनुस्मृति-विषयक भ्रान्तियों को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी तथा उन भ्रान्तियों के विस्तार को रोकेगी। तीसरा, एक ही स्थान पर, एक विषय पर, अनेक विचारकों के विचार एकत्र मिलना कठिन होता है। सबको सब पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं, अतः अध्ययन-मनन में पाठकों को सुविधा-लाभ होगा।

सन् 1996 (विक्रमी सम्वत् 2053) और उसके कुछ पूर्व वर्षों में कुछ राजनीतिक दलों ने मनु-मनुस्मृति को अपनी स्वार्थपूर्ति का मुद्दा बनाकर ‘मनुवाद’ के नाम पर खूब विषवमन किया और भारतीय समाज में विघटन के बीज बोने शुरू कर दिये। आर्यसमाज जैसा राष्ट्रभक्त संगठन इस राष्ट्रविरोधी गतिविधि से चिन्तित हो उठा। राष्ट्रहितैषी बुद्धिजीवियों के मस्तक पर चिन्ता की रेखाएं झालकने लगीं। सब सोचते थे कि इसका निराकरण कैसे किया जाये। दुःख का विषय यह भी था कि यह सारा प्रोपगेंडा मिथ्या था और पाश्चात्य लेखकों द्वारा प्रयुक्त फूट-नीति पर टिका था। ऐसा लग रहा था—जैसे अंग्रेजों का स्वप्न स्वतन्त्र भारत में साकार होने लगा है।

किसी को भी आगे न आता देख इस समाज और राष्ट्रविरोधी निन्दनीय गतिविधि को रोकने के लिए आर्यसमाज उठ खड़ा हुआ। अपने तर्क रूपी तीर और प्रमाण रूपी तरक्स लेकर, दृढ़संकल्प के कमरबन्द से

कमर कसकर, वैचारिक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने सन् 1996 (विक्रमी संवत् 2053) को ‘मनुवर्ष’ घोषित कर दिया और मनुविरोधी वितण्डावाद को रोकने तथा मनु-सम्बन्धी सत्य मान्यताओं को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्यक्रम बनाया। देश के कोने-कोने में आर्यसमाजों के माध्यम से मनु-विषयक उत्सवों के आयोजन हुए, अनेक स्थानों पर महासम्मेलन भी हुए, लेखों और ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। यह सब देखकर मनुविरोधी ठिठकने लगे। आर्यों के तर्कों और प्रमाणों के उत्तर न सूझने पर वे लोग बगलें झाँकते रह गये। मनुविरोधी अभियान में एक ठहराव-सा आ गया और भ्रान्तियों का प्रसार धीमा पड़ गया।

उसी वर्ष में स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती ने ‘राजर्षि मनु’ के नाम से आठ ट्रैक्ट प्रकाशित किये। एक ट्रैक्ट एक विद्वान के लेख पर आधारित था। लेखक सभी सुलझे हुए विद्वान् थे। विषय को प्रभावशाली शैली में प्रस्तुत करने की योग्यता उनकी लेखनी में थी। जिस लेखक का जैसा अपना विचार था उसको बिना किसी टीका-टिप्पणी के उसी रूप में प्रकाशित कर दिया। लक्ष्य यही था कि लोगों तक मनु-सम्बन्धी अच्छे विचार एक बार पहुँचें।

उसी वर्ष आर्यसमाज भुवनेश्वर (उड़ीसा) के उत्सव पर उड़िया के आर्य लेखक श्री प्रियब्रत दास जी इन्जीनियर के निमन्त्रण पर स्वामी जी का और मेरा जाना हुआ। हम दोनों एक ही कक्ष में तीन दिन रुके। ‘राजर्षि मनु’ नामक पुस्तिकाओं के सैद्धान्तिक पक्ष पर पर्याप्त चर्चा हुई। स्वामीजी ने मुझे टिप्पणी-सहित एक पुस्तकाकार में इनका सम्पादन करने को कहा। फिर वह बात विस्मृति के अध्यकार में विलीन हो गयी। कुछ वर्षों के बाद स्वामी जी महाराज भी दिवंगत हो गये।

विचित्र संयोग देखिए। आर्य साहित्य के प्रकाशक, प्रचारक और वितरक ‘गोविन्दराम हासानन्द, नयी सड़क, दिल्ली’ के मन में वही योजना वर्षों बाद फिर से अंकुरित हुई और उसके सम्पादन का दायित्व फिर से मुझ पर आ गया। तब तो यह पूरा नहीं हो सका किन्तु अब इसको पूरा कर अपने पाँच लेखों के साथ इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ। पाठक

इसका अध्ययन कर अधिकाधिक लोगों को पढ़ने को प्रेरित करें जिससे भारत के ही नहीं, अपितु मानव जाति के गौरव रूप महापुरुष, आदिराजा, विश्व के आदि संविधान निर्माता, आदि धर्मशास्त्रकार और मानवों के आदि-प्रमुख-पुरुष महर्षि मनु के विषय में फैलाई जा रही भ्रान्तियों पर विराम लग सके और मनु की प्रतिष्ठा की रक्षा हो सके।

इस राष्ट्रहितकारी पुण्य कार्य का प्रकाशन-दायित्व अपने हाथों में लेने के लिए 'गोविन्दराम हासानन्द' प्रकाशन के स्वामी श्री अजयकुमार जी शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

गुडगांव

—डॉ० सुरेन्द्रकुमार

अनुक्रम

1. आदिराजा और आदि विधि-प्रदाता मनु स्वायम्भुव (जीवनवृत्त, व्यक्तित्व और कृतित्व) (डॉ. सुरेन्द्रकुमार)	11
2. मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ (डॉ. सुरेन्द्रकुमार)	35
3. मनुस्मृति में प्रक्षेप : प्रमाण और दुष्परिणाम (डॉ. सुरेन्द्रकुमार)	54
4. मनुस्मृति : एक अध्ययन (स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय)	67
5. मनुस्मृति : रचनाकाल और प्रक्षेप (स्व. आचार्य रामदेव)	108
6. मनु की देन (स्व. पं. भगवद्दत्त)	138
7. राजर्षि मनु और मनुस्मृति (स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल)	154
8. राजर्षि मनु और वेद (डॉ. भवानीलाल भारतीय)	169
9. मनु की वेदों के प्रति आस्था (डॉ. कृष्णलाल)	186
10. मनु की दृष्टि में ब्राह्मण और शूद्र (डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल)	210
11. चिन्तन की एक भिन्न दिशा : मनु की वर्ण-व्यवस्था में शूद्र तथा अन्य वर्ण (डॉ. उर्मिला रुस्तगी)	238
12. वर्णव्यवस्था में आर्य-शूद्र वैमनस्य की अवधारणा पाश्चात्य दुरभिसन्धि की देन (डॉ. सुरेन्द्र कुमार)	268
13. किस मनु का विरोध किया है डॉ० अम्बेडकर ने ? (डॉ. सुरेन्द्र कुमार)	276

मनुस्मृति की मौलिक मान्यताएँ

डॉ सुरेन्द्रकुमार
(मनुस्मृति भाष्यकार एवं समीक्षक)

भारतीय राजनीति का आचरण बहुत उच्छृंखल है। तटरहित बरसाती नदी के समान निहित स्वार्थों के लिए उसकी धारा किस ओर मुड़ जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता। चुनाव जीतने के लिए उसे बस, कोई 'मुद्रा' रूपी ब्रह्मास्त्र चाहिए, चाहे उसके प्रक्षेपण का परिणाम देश और समाज के लिए कितना ही विघटनकारी और विनाशकारी हो! इसी लक्ष्य को पाने के लिए कुछ राजनीतिक दलों ने, प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुसार, मानवसृष्टि के आरम्भिक काल में जन्मे महर्षि मनु को खोद निकाला है और उसके नाम पर एक झूठा मुद्रा गढ़ लिया है—‘मनुवाद’। ‘मनुवाद’ शब्द हवा में उछाल तो दिया गया है किन्तु उसका अर्थ स्पष्ट नहीं किया गया है। इसका प्रयोग भी उतना ही अस्पष्ट और लचीला है, जितना राजनीतिक शब्दों का। किन्तु जिन सन्दर्भों में इसका प्रयोग किया जा रहा है उससे स्पष्ट होता है कि मनु और मनुवाद के विषय में भ्रान्तियों का बोलबाला है और वे किंवदन्तियों के समान फैल रही हैं। यदि हम मनुस्मृति के निष्कर्ष के अनुसार मनुवाद का अर्थ करें तो सही अर्थ होगा—‘गुण-कर्म-योग्यता के श्रेष्ठ मूल्यों के महत्व पर आधारित विचारधारा’, और तब ‘अगुण-अकर्म-अयोग्यता के अश्रेष्ठ मूल्यों पर आधारित विचारधारा’ को कहा जायेगा—‘गैर मनुवाद’। जो इसके विपरीत अर्थ में ‘मनुवाद’ शब्द का प्रयोग करते हैं वे स्वयं भ्रमित हैं और अन्यों को भ्रमित कर रहे हैं।

आश्चर्य तो तब होता है जब हम ऐसे लोगों को मनु और मनुस्मृति का

विरोध करते हुए पाते हैं, जिन्होंने मनुस्मृति को पढ़ने की बात तो दूर, उसकी आकृति तक देखी नहीं होती। सामान्य व्यक्तियों की बात छोड़ दीजिए, डॉ० अम्बेडकर जैसे व्यापक अध्येता भी मनु-विरोध के प्रवाह में इतने बह गये हैं कि उन्हें प्रत्येक शूद्र-विरोध मनुविहित नजर आता है। शंकराचार्य द्वारा लिखित शूद्रविरोधी वचनों को भी उन्होंने मनुस्मृति-प्रोक्त कहकर मनु के खाते में जोड़ दिया है। साधारण लेखकों में मनु के नाम पर जो अराजकता पाई जाती है, उसका विवरण लम्बा है। मनुस्मृति-विरोधी सभी लोगों में कुछ एकांगी और पूर्वाग्रहयुक्त बातें समानरूप से पाई जाती हैं—

1. वे कर्मणा वर्णव्यवस्था को सिद्ध करने वाले आपत्तिरहित श्लोकों और जिनमें स्त्री-शूद्रों के लिए हितकर और सद्भावपूर्ण बातें हैं, जो कि पूर्वापर प्रसंग से सम्बद्ध होने के कारण मौलिक सिद्ध होते हैं, को उद्धृत ही नहीं करते। केवल आपत्तिपूर्ण श्लोकों, जो कि प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, को उद्धृत करके निन्दा-आलोचना करते हैं।

2. उन्होंने इस शंका का समाधान नहीं किया है कि एक ही पुस्तक में, एक ही प्रसंग में स्पष्टतः परस्पर-विरोधी और प्रसंग-विरोधी कथन क्यों पाये जाते हैं? और आपने दो कथनों में से केवल एक कथन को ही क्यों ग्रहण किया? दूसरे की उपेक्षा क्यों की? यदि वे लोग इस प्रश्न पर अपने लेखन में विचार करते तो उनकी आपत्तियों का उत्तर उन्हें स्वयं मिल जाता। न आक्रोश में आने का अवसर आता, न विरोध का, अपितु मनु-सम्बन्धी बहुत-सी भ्रान्तियों से भी बच जाते।

मनुविषयक प्रमुख तीन भ्रान्तियाँ : मनु और मनुस्मृति के सम्बन्ध में पाई जाने वाली भ्रान्तियों को मुख्यरूप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(क) मनु ने जन्म पर आधारित जाति-पांति व्यवस्था का निर्माण किया।

(ख) उस व्यवस्था में मनु ने शूद्रों अर्थात् वर्तमान दलितों के लिए पक्षपातपूर्ण एवं अमानवीय विधान किये हैं, जबकि सवर्णों, उनमें भी विशेषतः ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्रदान किये हैं। इस प्रकार मनु

शूद्रविरोधी थे।

(ग) मनु स्त्रीविरोधी भी थे। उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार नहीं दिये। मनु ने स्त्रियों की निन्दा की है।

इन तीन भ्रान्तियों के समाधान के लिए बाह्य प्रमाणों और मतों की अपेक्षा मनुस्मृति के अन्तःसाक्ष्यों को प्रस्तुत करना अधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी रहेगा, अतः उन्हीं के आधार पर निष्कर्ष दिये जाते हैं—

मनु वर्णव्यवस्था के प्रवर्तक हैं, जातिव्यवस्था के प्रवर्तक नहीं हैं—महर्षि मनु उस आदियुग के व्यक्ति हैं जब जाति की अवधारणा अस्तित्व में ही नहीं आई थी, अतः मनुस्मृति में जन्म पर आधारित जातिव्यवस्था नहीं है अपितु गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित व्यवस्था है, जो वेदमूलक है। यह मूलतः तीन वेदों (ऋग् ० 10/10/11-12; यजु० 31/10-11; अथर्व० 19/6/5/6) में पाई जाती है।¹ राजर्षि मनु ने इसे वेदों से ग्रहण करके अपने शासन में क्रियान्वित किया तथा अपने धर्मशास्त्र के द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किया। यह समझ लेना आवश्यक है कि वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्पर विरोधी दो व्यवस्थाएँ हैं। एक की उपस्थिति में दूसरी नहीं टिक सकती। इनके अन्तर्निहित अर्थभेद को समझकर इनके मौलिक अन्तर को आसानी से समझा जा सकता है। वह यह है—वर्णव्यवस्था में वर्ण प्रमुख हैं और जातिव्यवस्था में जाति अर्थात् ‘जन्म’ प्रमुख है। बालक या व्यक्ति ‘वर्ण’ का अपनी रुचि के अनुसार चयन करता है, जबकि जाति माता-पिता से जन्म होते ही निर्धारित हो जाती है। वर्ण कभी भी उसकी योग्यता को ग्रहण कर बदला जा सकता है जबकि ‘जाति’ जो जन्म से निर्धारित हो गयी, वह मृत्युपर्यन्त रहती है। जब तक गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर व्यक्ति इन समुदायों का वरण करते रहे, तब तक वह वर्णव्यवस्था कहलाई। जब जन्म से ब्राह्मण और शूद्र आदि वर्ग माने

1. प्रश्न— यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यक्तप्ययन्।

मुखं किमस्य, कौ बाहू, का ऊरु पादौ उच्येते ॥

उत्तर— ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत ॥

जाने लगे तो वह जातिव्यवस्था बन गयी। वरण करने अर्थ में ‘वृज्’ धातु से बने ‘वर्ण’ शब्द का अर्थ ही यह संकेत देता है कि जब यह व्यवस्था बनी तब यह गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार ‘वरण’=चयन की जाती थी, जन्म से नहीं थी।¹ भारतीय समाज में जन्मना जातिवाद की भावना बौद्धकाल से कुछ शताब्दी पूर्व ही पनपी है।

मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था का साधक एक बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि प्रथम अध्याय में मनु ने केवल चार वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख किया है, वर्णोत्पत्ति के उस प्रसंग में किन्हीं जातियों अथवा गोत्रों का परिगणन नहीं किया है। यदि मनु के समय जातियाँ होतीं और जन्म के आधार पर वर्ण का निर्धारण होता तो वे चार वर्णों के उल्लेख के प्रसंग में उन जातियों का परिगणन अवश्य करते और बतलाते कि अमुक जातियाँ या गोत्र ब्राह्मण हैं और अमुक शूद्र। इसके विपरीत मनु, जन्माधारित महत्त्वाभाव को उपेक्षणीय समझते हैं, (3/109), यहाँ तक कि आदर-बढ़प्पन के मानदण्डों में कुल-गोत्र-जाति का उल्लेख तक नहीं है, केवल विद्वत्ता, सत्कर्म आदि का है² यदि हम मनु को जन्मना वर्णव्यवस्था का प्रतिपादक मान लेते हैं तो इससे मनुस्मृतिरचना का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र माना जाने लगे, तो वह विहित कर्म करे या न करे, वह उसी वर्ण में रहेगा। उसके लिए कर्मों का विधान निरर्थक है और वर्ण-परिवर्तन का विधान भी व्यर्थ सिद्ध हो जायेगा।

वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि वर्णव्यवस्था में रुचि और योग्यता के अनुसार कभी भी वर्णपरिवर्तन हो सकता है और व्यक्ति का उस वर्णपरिवर्तन की स्वतन्त्रता होती है, जबकि जातिव्यवस्था में जहाँ एक बार जन्म हो गया, जीवनपर्यन्त वही जाति रहती है। मनु की वर्णव्यवस्था में व्यक्ति को वर्ण-परिवर्तन की स्वतन्त्रता थी। इस विषय में मनुस्मृति का एक महत्वपूर्ण श्लोक है, जो सभी सन्देहों को दूर कर देता है—

1. वर्णः वृणोते: । (निरुक्त)

2. वित्तं बन्धुः वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ (2/136)

शूद्रो ब्राह्मणताम्-एति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।

क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च ॥

अर्थात्— ‘गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर ब्राह्मण शूद्र बन जाता है और शूद्र ब्राह्मण। इसी प्रकार क्षत्रियों और वैश्यों के कुलों में उत्पन्न बालकों या व्यक्तियों का भी वर्ण परिवर्तन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त भी मनुस्मृति में दर्जनों ऐसे श्लोक हैं, जिनमें निर्धारित कर्मों के त्याग से और निकृष्ट कर्मों के कारण द्विजों को शूद्र कोटि में परिणित करने का विधान किया है। (द्रष्टव्य 2/37, 40, 103, 168; 4/ 245 आदि श्लोक)। और शूद्रों को श्रेष्ठ कर्मों से उच्चवर्ण की प्राप्ति का विधान है (9/335)।¹ ऋग्वेद से लेकर महाभारत (गीता) पर्यन्त यह कर्माधारित वर्णव्यवस्था चलती रही है। गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—‘चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः’ (4/13) अर्थात् ‘गुण-कर्म-विभाग के अनुसार चातुर्वर्णव्यवस्था का निर्माण किया गया है। जन्म के अनुसार नहीं।

भारतीय इतिहास में, सैकड़ों ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं, जो कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था की पुष्टि करते हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि किसी भी वर्ण को जन्म के आग्रह से नहीं जोड़ा गया। जैसे (1) दासी का पुत्र ‘कवष ऐलूष’ और शूद्रापुत्र ‘वत्स’ मन्त्रद्रष्टा होने के कारण दोनों ऋषि कहलाये। (ऐतरेय ब्राह्मण 2/19) (2) क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राजा विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बने। (महाभारत, अनुशासन 3/1-2 तथा रामायण बाल काण्ड में) (3) अज्ञात कुल के सत्यकाम जाबाल ब्रह्मवादी ऋषि बने। (छान्दोग्य उप० 4/4-6) (4) चण्डाल के घर में उत्पन्न ‘मातंग’ एक ऋषि कहलाये। (महाभारत, अनु० अ० 3) (5) (कुछ कथाओं के अनुसार वाल्मीकि-रामायण के अनुसार नहीं) निम्न कुल में उत्पन्न वाल्मीकि, महर्षि वाल्मीकि की पदवी को प्राप्त कर गये। (स्कन्द पुराण, वै० 21) (6) दासीपुत्र विदुर राजा धृतराष्ट्र के महामन्त्री बने और महात्मा कहलाये। (महाभारत आदि पर्व 100, 101 अध्याय) इसके विपरीत कर्मों के ही कारण (7) पुलस्त्य ऋषि का वंशज

1. शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुः, मृदुवागनहंकृतः।

ब्राह्मणद्याश्रयो नित्यम्, उत्तमां जातिमश्नुते ॥ (9/335)

लंकाधिपति रावण 'राक्षस' कहलाया। (वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड) (8) राम के पूर्वज रघु का 'प्रवृद्ध' नामक पुत्र नीच कर्मों के कारण क्षत्रियों से बहिष्कृत होकर 'राक्षस' बना। (9) राजा त्रिशंकु चण्डालभाव को प्राप्त हुआ। (10) विश्वामित्र के कई पुत्र शूद्र कहलाये और कई क्षत्रिय रहे जो बाद में ब्राह्मण बन गये। व्यक्तिगत उदाहरणों के अतिरिक्त, इतिहास में पूरी जातियों का अथवा जाति के पर्याप्त भाग का वर्णपरिवर्तन भी मिलता है। महाभारत और मनुस्मृति में (10/43-44) कुछ पाठभेद के साथ पाये जाने वाले श्लोकों से ज्ञात होता है कि निम्नलिखित जातियाँ (समुदाय) पहले क्षत्रिय थीं किन्तु अपने क्षत्रिय कर्तव्यों के त्याग के कारण और ब्राह्मणों द्वारा बताये प्रायश्चित्त न करने के कारण वे शूद्रकोटि में परिणित हो गईं। वे जातियाँ हैं—पौण्ड्रक, औड़, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद, खश।¹ महाभारत अनु. 35/17-18 में इन समुदायों में इनके अतिरिक्त मेकल, लाट, कान्वशिरा, शैण्डिक, दार्व, चौर, शबर, बर्बर जातियों का भी उल्लेख है। बाद तक भी वर्णपरिवर्तन के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। जे. विलसन और एच.एल. रोज के अनुसार राजपूताना, सिन्ध और गुजरात में पोखरना या पुष्करण ब्राह्मण और उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिला के आमताड़ा के पाठक और महावर राजपूत वर्णपरिवर्तन से निम्न जाति से ऊँची जाति के बने (देखिए हन्दी विश्वकोश, भाग 4 में वर्ण शब्द)। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और दलित जातियों में समान रूप से पाये जाने वाले अनेक गोत्र भी यह सिद्ध करते हैं कि वे सभी एक ही मूल परिवारों के वंशज हैं क्योंकि गोत्र एक ही रहता है। कालक्रमानुसार व्यवसाय और जन्म के आधार पर उनकी जाति रूढ़ हो गयी।

मनुस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था के आधारभूत तत्त्व हैं—गुण, कर्म, योग्यता। मनु व्यक्ति अथवा वर्ण को महत्व और आदर-सम्मान नहीं देते अपितु व्यक्ति के गुणों को देते हैं। जहाँ इनका आधिक्य है, उस व्यक्ति

1. शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः ।

वृष्लत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥

पौण्ड्रकाश्चौड्रविडः काम्बोजाः यवनाः शकाः ।

पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराताः दरदा खशाः ॥ (10/43-44)

और वर्ण का महत्व तथा आदर-सम्मान अधिक है, न्यून होने पर न्यून है। आज तक संसार की कोई भी सभ्य व्यवस्था इन तत्त्वों को न नकार पाई है और न नकरेगी। वर्तमान में निश्चित सर्वसमानता का दावा करने वाली साम्यवादी व्यवस्था भी इन तत्त्वों से स्वयं को पृथक् नहीं रख सकी। उसमें भी गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार पद और सामाजिक स्तर हैं। उन्हीं के अनुरूप वेतन, सुविधा और सम्मान में अन्तर है। हमारी आजकल की प्रशासनिक और व्यावसायिक व्यवस्था की तुलना करके देखिए, मनु की बात आसानी से समझ आ जायेगी और ज्ञात होगा कि मनु की और आज की इन व्यवस्थाओं में मूलभूत समानता है। सरकार की प्रशासन व्यवस्था में चार वर्ग हैं— 1. प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी, 2. द्वितीय श्रेणी राजपत्रित अधिकारी, 3-4 तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। इनमें प्रथम दो वर्ग अधिकारी हैं, दूसरे कर्मचारी। यह विभाजन गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर है और इसी आधार पर इनका महत्व, सम्मान, वेतन एवं अधिकार हैं। इन पदों के लिए योग्यताओं का प्रमाणीकरण पहले भी शिक्षासंस्थान (गुरुकुल, आश्रम, आचार्य) करते थे और आज भी शिक्षासंस्थान (विद्यालय, विश्वविद्यालय आदि) ही करते हैं। शिक्षा का कोई प्रमाणपत्र नहीं होने से, अल्पशिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति सेवा और शारीरिक श्रम के ही कार्य करता है और यह अन्तिम कर्मचारी श्रेणी में आता है। पहले भी जो गुरु के पास जाकर विद्या प्राप्त नहीं करता था, वह इसी स्तर के कार्य करता था और उसकी संज्ञा 'शूद्र' थी। शूद्र के अर्थ हैं—'निम्न स्थिति वाला', 'आदेशवाहक', 'सेवक' आदि। नौकर, चाकर, सेवक, प्रेष्य, सर्वेट, अर्दली, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी आदि संज्ञाओं में कितनी अर्थसमानता है, आप स्वयं देख लीजिए। 'शूद्र' के निर्वचनाधारित अर्थ हैं—'शुद्रवति इति' = जो स्वामी के आदेशानुसार इधर-उधर आने-जाने का कार्य करता है। 'शोच्यां स्थितिमापनः' = जो अपनी निम्नतम स्थिति से चिन्तित रहता है कि मैं सबसे पीछे क्यों रह गया। इन अर्थों में कोई घृणा का भाव नहीं है।

मनुस्मृति में शूद्र सम्मान : मनुस्मृति के अन्तःसाक्षों पर दृष्टिपात करने पर हमें कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आधारभूत तथ्य उपलब्ध होते हैं जो शूद्रों के विषय में मनु की भावनाओं का संकेत देते हैं। वे इस प्रकार हैं—

आजकल की दलित, पिछड़ी और जनजाति कही जाने वाली जातियों को मनुस्मृति में कहीं ‘शूद्र’ नहीं कहा गया है। मनु द्वारा दी गयी शूद्र की परिभाषा भी आज की दलित और पिछड़ी जातियों पर लागू नहीं होती। मनुकृत शूद्र की परिभाषा है—जिनका ब्रह्मजन्म = विद्याजन्म रूप दूसरा जन्म होता है, वे ‘द्विजाति’ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं। जिनका किसी भी कारण से ब्रह्मजन्म नहीं होता वह ‘एकजाति’ रहनेवाला शूद्र है।’ अर्थात् जो बालक निर्धारित समय पर गुरु के पास जाकर संस्कारपूर्वक वेदाध्ययन और अपने वर्ण की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है, वह उसका ‘विद्याजन्म’ नामक दूसरा जन्म है, जिसे शास्त्रों में ‘ब्रह्मजन्म’ कहा गया है। जो जानबूझकर या मंदबुद्धि होने के कारण अथवा अयोग्य होने के कारण विद्याध्ययन और उच्च तीन द्विज वर्णों में से किसी भी वर्ण की शिक्षा-दीक्षा नहीं प्राप्त करता, वह अशिक्षित व्यक्ति ‘एकजाति = एक जन्म वाला’ अर्थात् शूद्र कहलाता है, चाहे वह किसी कुल में उत्पन्न हुआ हो। इसके अतिरिक्त उच्च वर्णों में एक बार दीक्षित होकर भी जो धारित वर्ण के निर्धारित कर्मों को नहीं करता, वह भी शूद्र आदि हो जाता है (मनु० 2/126, 168, 170, 172; 4/245; 10/4 आदि)।¹ इस विषयक एक-दो प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः, त्रयो वर्णः द्विजातयः।

चतुर्थं एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः॥ (मनु० 10/4)

अर्थात् आर्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों को ‘द्विजाति’ कहते हैं, क्योंकि इनका दूसरा विद्याजन्म होता है। चौथा वर्ण एकजाति = केवल माता-पिता से ही जन्म प्राप्त करने वाला और विद्याजन्म न प्राप्त करने वाला ‘शूद्र’ है। इन चारों वर्णों के अतिरिक्त आर्यों में पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं है।’ इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि मनु ने शूद्र सहित चारों वर्णों को ‘सवर्ण’ और आर्य माना है, चारों से भिन्न को ‘असवर्ण’। किन्तु परवर्ती समाज मनुविरुद्ध रूप से शूद्र को असवर्ण कहने लग गया। मनु ने

1. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ (2/168)

उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन्।

ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्॥ (4/245)

शिल्प, कारीगरी आदि के कार्य करने वाले लोगों को वैश्य वर्ण के अन्तर्गत माना है (3/64; 9/329; 10/99; 10/120), किन्तु परवर्ती समाज ने उन्हें भी शूद्रकोटि में ला खड़ा कर दिया। दूसरी ओर, मनु ने कृषि, पशुपालन को वैश्यों का कार्य माना है (1/90), किन्तु सदियों से ब्राह्मण और क्षत्रिय भी कृषि-पशुपालन कर रहे हैं। उन्हें वैश्य घोषित नहीं किया। इनको मनु की व्यवस्था कैसे माना जा सकता है? ये सब जातिवादी समाज की अपनी व्यवस्थाएँ हैं, इनको मनु पर थोपना अनुचित है।

अनेक श्लोकों से ज्ञात होता है कि शूद्रों के प्रति मनु की मानवीय सदृभावना थी और वे उन्हें अस्पृश्य, निन्दित अथवा घृणित नहीं मानते थे। मनु ने शूद्रों के लिए 'उत्तम', 'उत्कृष्ट', 'शुचि' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है, ऐसे विशेषणों से प्रयुक्त व्यक्ति कभी 'अस्पृश्य' या 'घृणित' नहीं माना जा सकता (9/335)¹। शूद्रों को द्विजाति वर्णों के घरों में पाचन, सेवा आदि श्रमकार्य करने का निर्देश दिया है (1/91; 933-335)² किसी द्विज के यहाँ यदि कोई शूद्र अतिथिरूप में आ जाये तो उसे भोजन कराने का आदेश है (3/112)³ द्विजों को आदेश है कि वे अपने भृत्यों को, जो कि शूद्र होते थे, पहले भोजन कराने के बाद फिर स्वयं भोजन करें (3/116)⁴ क्या आज के वर्णरहित कथित सभ्य समाज में भृत्यों को पहले भोजन कराया जाता है? और उनका इतना ध्यान रखा जाता है? आप स्वयं देखिए कि शूद्रों के प्रति कितना मानवीय, सम्माननीय और कृपापूर्ण दृष्टिकोण था मनु का!

वैदिक वर्णव्यवस्था में परमात्मा पुरुष अथवा ब्रह्मा के मुख, बाहु, जंघा, पैर की समानता से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की आलंकारिक उत्पत्ति बतलाई है (1/31)⁵ इससे तीन निष्कर्ष निकलते हैं।

1. द्रष्टव्य पृ०……पर टिप्पणी में शुचिरुक्तदृशुश्रुषुः। (9/335 श्लोक)
2. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
सर्वेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ (1/9)
3. वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथि धर्मिणौ।
भोजयेत सह भृत्यैस्तावावानृशंस्यं प्रयोजयन्॥ (3/112)
4. भुक्तवत्सु-अथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुज्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दप्ती ॥ (3. 116)
5. द्रष्टव्य पृ० पर टिप्पणी में 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'—मन्त्र।

एक, चारों वर्णों के व्यक्ति परमात्मा की एक जैसी सन्तानें हैं। दूसरा, एक जैसी सन्तानों में कोई अस्पृश्य और घृणित नहीं होता। तीसरा, एक ही शरीर का अंग ‘पैर’ अस्पृश्य या घृणित नहीं होता है और भारतीय परम्परा में तो वैसे भी घर-समाज में चरण-स्पर्श की परम्परा है। ऐसे श्लोकों के रहते कोई तटस्थ व्यक्ति क्या यह कह सकता है कि मनु की अथवा वैदिक वर्ण-व्यवस्था में शूद्रों को अस्पृश्य और घृणित माना जाता था ?

मनु ने सम्मान के विषय में शूद्रों को विशेष छूट दी है। मनुविहित सम्मान-व्यवस्था में प्रथम तीन वर्णों में अधिक गुणों के आधार पर अधिक सम्मान देने का कथन है जिनमें विद्यावान् सबसे अधिक सम्मान्य है (2/111, 112, 130)।¹ किन्तु शूद्र के प्रति अधिक सद्भाव प्रदर्शित करते हुए उन्होंने विशेष विधान किया है कि द्विज वर्ण के व्यक्ति नब्बे वर्ष के शूद्र को पहले सम्मान दें, जबकि शूद्र अशिक्षित होता है। यह सम्मान पहले तीन वर्णों में किसी को नहीं दिया गया है—

मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः । (2/137)

अर्थात् ‘नब्बे वर्ष के शूद्र को सभी द्विज पहले सम्मान दें। शेष तीन वर्णों में अधिक गुणी पहले सम्मान का पात्र है।’ इसी प्रकार ‘न धर्मात् प्रतिषेधनम्’ (10/126) अर्थात् ‘शूद्रों को धार्मिक कार्य करने का निषेध नहीं है’ यह कहकर मनु ने शूद्र को धर्मपालन की स्वतन्त्रता दी है। इस तथ्य का ज्ञान उस श्लोक से भी होता है जिसमें मनु ने कहा है कि ‘शूद्र से भी उत्तम धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए’ (2/213)।² वेदों में शूद्रों को स्पष्टतः यज्ञ आदि करने और वेदशास्त्र पढ़ने का अधिकार दिया है (यजुर्वेद 26/2; ऋग् ० 10/53/4; निरुक्त 3/8 आदि)।³ मनु की प्रतिज्ञा है कि उनकी

1. द्रष्टव्य पृ० ० पर टिप्पणी में ‘वित्तं बन्धुर्वयः’ श्लोक।

2. अन्त्यादपि परं धर्मम्। (मनु० 2/238)

3. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः शूद्रायचार्याय स्वायचारणाय च।

(यजु० 26/2)

यज्ञियासः पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वम्। (ऋग्वेद 10/53/4)

पञ्चजनाः चत्वारो वर्णाः निषादः पञ्चमः। (निरुक्त 3/8)

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। (अथर्ववेद 3/5/18)

मनुस्मृति वेदानुकूल है, अतः वेदाधारित होने के कारण मनु की भी वही मान्यता एँ हैं। यही कारण है कि उपनयन प्रसंग में कहीं भी शूद्र के उपनयन का निषेध नहीं किया है; क्योंकि शूद्र तो तब कहाता है, जब कोई उपनयन नहीं कराता। इसी प्रकार शूद्र से दासता कराने अथवा जीविका न देने का कथन मनु के निर्देशों के विरुद्ध है। मनु ने सेवकों, भूत्यों का वेतन, स्थान और पद के अनुसार नियत करने का आदेश राजा को दिया है और यह सुनिश्चित किया है कि उनका वेतन अनावश्यक रूप से न काटा जाये।
 (7/125-126; 8/216)¹

मनु की यथायोग्य एवं मनोवैज्ञानिक दण्डव्यवस्था—यह कहना नितान्त अनुचित है कि मनु ने शूद्रों के लिए कठोर दण्डों का विधान किया है और ब्राह्मणों को विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएँ प्रदान की हैं। मनु की दण्डव्यवस्था के मानदण्ड हैं—गुण-दोष, और आधारभूत तत्त्व हैं—बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर, पद, अपराध की प्रकृति और उसका प्रभाव। मनु की दण्डव्यवस्था यथायोग्य है, जो लोकतान्त्रिक और मनोवैज्ञानिक है। यदि मनु वर्णों में गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों को अधिक सम्मान और सामाजिक स्तर प्रदान करते हैं तो अपराध करने पर उन्हें उतना ही अधिक दण्ड भी देते हैं। इस प्रकार मनु की यथायोग्य दण्ड-व्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड है, और ब्राह्मण को सबसे अधिक; राजा को उससे भी अधिक। मनु की यह सर्वसामान्य दण्डव्यवस्था का यह मानदण्ड है, जो सभी दण्डस्थानों पर लागू होता है—

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।

षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ॥

ब्राह्मणस्य चतुःषष्ठिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।

द्विगुणा वा चतुःषष्ठिः, तददोषगुणविद्धि सः ॥

(8/337-338)

1. राजा कर्मसुयुक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।

प्रत्यहं कल्पयेद् वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः ॥ (7/125)

स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभैव वेतनम् ॥ (8/216)

अर्थात्— ‘किसी चोरी आदि के अपराध में शूद्र को आठ रुपये दण्ड दिया जाता है तो वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा, ब्राह्मण को चौंसठ गुणा, अपितु उसे एक सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड करना चाहिए क्योंकि उत्तरोत्तर वर्ण के गुण-दोषों और उनके परिणामों, प्रभावों आदि को भलीभांति समझने वाले हैं।’ इसके साथ ही मनु ने राजसभा को आदेश दिया है कि उक्त दण्ड से किसी को छूट नहीं दी जाये, चाहे वह स्वयं राजा, आचार्य, पुरोहित और राजा के पिता-माता ही क्यों न हों अपितु राजा को एक हजार गुणा दण्ड देने का कथन है।¹ राजा दण्ड दिये बिना मित्र को भी न छोड़े और कोई समृद्ध व्यक्ति शारीरिक अपराध दण्ड के बदले में विशाल धनराशि देकर छूटना चाहे तो उसे भी न छोड़े। (8/335, 347)

देखिए, मनु की दण्डव्यवस्था कितनी यथायोग्य मनोवैज्ञानिक, न्यायपूर्ण, व्यावहारिक और प्रभावशाली है। इसकी तुलना आज की दण्डव्यवस्था से करके देखिए, दोनों में अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। आज की दण्डव्यवस्था का नारा है—‘कानून की दृष्टि में सब समान हैं।’ पहला विरोध तो यही हुआ कि पदस्तर और बौद्धिक स्तर के अनुसार सम्मान-व्यवस्था तो पृथक्-पृथक् हैं और दण्ड एक जैसा। दूसरा, विरोध यह हुआ कि आज का दण्ड यथायोग्य दण्ड नहीं। इसे यों समझिये कि खेत चर जाने पर मेमने को भी एक डण्डा लगेगा, भैंसे, हाथी को भी। इसका प्रभाव क्या होगा? बेचारा मेमना डण्डे के प्रहार से मिमियाने लगेगा, भैंसे में कुछ हलचल होगी, हाथी को दण्ड की कुछ ही अनुभूति होगी, शेर उलटा खाने को दौड़ेगा। क्या यह वास्तव में समान दण्ड हुआ? समान दण्ड तो वह है, जो लोकव्यवहार में प्रचलित है। मेमने को डण्डे से, भैंस को लाठी से, हाथी को अंकुश से और शेर को हण्टर से वश में किया जाता है।

दूसरा उदाहरण लीजिए—एक अत्यन्त गरीब एक हजार रुपयों के दण्ड को कर्ज लेकर चुका पायेगा, मध्यवर्गीय थोड़ा कष्ट अनुभव करके और समृद्ध-सम्पन्न जूती की नोक पर रख देगा। इसी अमनोवैज्ञानिक दण्डव्यवस्था का परिणाम है कि दण्ड की पतली रस्सी में आज गरीब तो

1. कार्षपणं भवेद्दण्डस्यः यत्रान्यः प्राकृतो जनः।

तत्र राजा भवेद् दण्डयः सहस्रमिति धारणा॥ (8/336)

फंस जाते हैं, धन-पद-सत्ता-सम्पन्न शक्तिशाली लोग उस रस्सी को तोड़कर निकल भागते हैं। आंकड़े इकट्ठे करके देख लीजिए, स्वतन्त्रता के बाद कितने गरीबों को सजा हुई है, और कितने धन-पद-सत्ता-सम्पन्न लोगों को। आर्थिक अपराधों में समृद्ध लोग अर्थदण्ड भरते रहते हैं, अपराध करते रहते हैं। मनु की यथायोग्य दण्ड-व्यवस्था में ऐसा असन्तुलन नहीं है। मनु की दण्डव्यवस्था अपराध की प्रकृति पर निर्भर है। वे गम्भीर अपराध में यदि कठोर दण्ड का विधान करते हैं तो चारों वर्णों को ही, और यदि सामान्य अपराध में सामान्य दण्ड का विधान करते हैं, तो वह भी चारों वर्णों के लिए सामान्य होता है। शूद्रों के लिए जो कठोर दण्डों का विधान मिलता है वह जन्मना जातिवादियों द्वारा प्रक्षिप्त श्लोकों में है। निष्कर्ष यह है कि उपर्युक्त दण्डनीति के विरुद्ध जो श्लोक मिलते हैं, वे मनुरचित नहीं हैं।

मनुस्मृति में नारी-सम्मान और पुत्र-पुत्री के समान अधिकार—
मनुस्मृति के अन्तःसाक्ष्य कहते हैं कि मनु की जो स्त्री-विरोधी छवि प्रस्तुत की जा रही है, वह निराधार एवं तथ्यों के विपरीत है। राजर्षि मनु ने मनुस्मृति में स्त्रियों से सम्बन्धित जो व्यवस्थाएँ दी हैं वे सम्मान, सुरक्षा, समानता, सद्भाव और न्याय की भावना से प्रेरित हैं। कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं—

महर्षि मनु संसार के वह प्रथम राजा और महापुरुष हैं, जिन्होंने नारी के विषय में सर्वप्रथम ऐसा सर्वोच्च आदर्श उद्घोष दिया है, जो नारी की गरिमा, महिमा और सम्मान को असाधारण ऊँचाई प्रदान करता है। श्लोक में वर्णित सम्मान-भावना से बढ़कर नारियों के प्रति सम्मान-भावना और क्या हो सकती है?—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफलाः क्रियाः ॥ (3/56)

इसका सही अर्थ है—‘जिस परिवार में नारियों का आदर-सम्मान होता है, वहाँ देवता = दिव्य गुण, कर्म, स्वभावयुक्त सन्तानें और दिव्य लाभ आदि प्राप्त होते हैं और जहाँ इनका आदर-सम्मान नहीं होता, वहाँ परिवार में सब कार्यों में और जीवन में असफलता मिलती है।’ यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जहाँ नारियों का आदर होता है, उस घर में सन्तानें श्रेष्ठ और सभ्य बनती हैं, जहाँ मार-पिटाई और कलह होता है वहाँ सन्तानें

भी बिंगड़ जाती हैं और परिणाम में दुःख प्राप्त होता है।

स्त्रियों के प्रति प्रयुक्त सम्मानजनक एवं सुन्दर विशेषणों से बढ़कर, नारियों के प्रति मनु की भावना का बोध कराने वाले प्रमाण और कोई नहीं हो सकते। वे कहते हैं कि नारियाँ घर का भाग्योदय करने वाली, आदर के योग्य, घर की ज्योति, गृहशोभा, गृहलक्ष्मी, गृहसंचालिका एवं गृहस्वामिनी, घर का स्वर्ग, संसारयात्रा की आधार हैं (9/11, 26, 28; 5/150)। कल्याण चाहने वाले परिवारजनों को स्त्रियों का आदर-सत्कार करना चाहिए, अनादर से शोकग्रस्त रहने वाली स्त्रियों के कारण घर और कुल नष्ट हो जाते हैं। स्त्री की प्रसन्नता में ही कुल की वास्तविक प्रसन्नता है (3/55-62)। इसलिए वे गृहस्थों को उपदेश देते हैं कि परस्पर सन्तुष्ट रहें एक-दूसरे के विपरीत आचरण न करें और ऐसा कोई कार्य न करें जिससे एक-दूसरे से वियुक्त होने की स्थिति आ जाये (9/101-102)। मनु की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए एक श्लोक ही पर्याप्त है—

प्रजनार्थं महाभागा: पूजार्हा: गृहदीप्तयः ।

स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ (मनु० 9/26)

अर्थात्—‘सन्तान की उत्पत्ति करके घर का भाग्योदय करने वाली, आदर-सम्मान के योग्य, गृहज्योति होती हैं स्त्रियाँ। शोभा-लक्ष्मी और स्त्री में कोई अन्तर नहीं है, वे घर की प्रत्यक्ष शोभा हैं।’ ध्यान दीजिए—‘स्त्रियाँ लक्ष्मी का रूप हैं’ यह उक्ति मनु के इस मन्तव्य से ही प्रचलित हुई है।

मनुमत से अनभिज्ञ पाठकों को यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि मनु ही सबसे पहले वह संविधान-निर्माता हैं जिन्होंने पुत्र-पुत्री की समानता को घोषित करके उसे वैधानिक रूप दिया है। देखिए स्पष्ट उद्घोष—‘पुत्रेण दुहिता समा’ (मनु० 9/130) अर्थात् ‘पुत्री पुत्र के समान होती है।’

साथ ही मनु ने पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री को समान अधिकारी माना है। उनका यह मत मनुस्मृति के 9/130, 192 में वर्णित है। इसे निरुक्त शास्त्र में इस प्रकार उद्घृत किया गया है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।

मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ (3/1/4)

अर्थात्—‘सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायम्भुव मनु ने यह विधान किया है

कि दायभाग = पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री का समान अधिकार होता है।' मातृधन में केवल कन्याओं का अधिकार विहित करके मनु ने परिवार में कन्याओं के महत्व में अभिवृद्धि की है (9/131)। स्त्रियों को अबला समझकर कोई भी, चाहे वह बन्धु-बान्धव ही क्यों न हो, यदि स्त्रियों के धन पर कब्जा कर लें, तो उन्हें चोर-सदृश दण्डित करने का आदेश मनु ने दिया है (9/212, 3/52; 8/2; 8/29)। स्त्रियों की सुरक्षा के दृष्टिगत नारियों की हत्या और उनका अपहरण करने वालों के लिए मृत्युदण्ड का विधान करके तथा बलात्कारियों के लिए यातनापूर्ण दण्ड देने के अथवा 'देश-निकाला' का आदेश देकर मनु ने नारियों की सुरक्षा को सुनिश्चित कराने का यत्न किया है (8/323; 9/232; 8/352)। नारियों के जीवन में आने वाली प्रत्येक छोटी-बड़ी कठिनाई का ध्यान रखते हुए मनु ने उनके निराकरण हेतु स्पष्ट निर्देश दिये हैं। पुरुषों को निर्देश है कि वे माता, पत्नी और पुत्री के साथ झगड़ा न करें (4/180)।¹ इन पर मिथ्या दोषारोपण करने वालों, इनको निर्दोष होते हुए त्यागने वालों, पत्नी के प्रति वैवाहिक दायित्व न निभाने वालों के लिए दण्ड का विधान है (8/275, 389, 9/4)।

विवाह के विषय में मनु के आदर्श विचार हैं। मनु ने शिक्षाप्राप्त कन्याओं को योग्य पति का स्वयं वरण करने का निर्देश देकर 'स्वयंवर विवाह' का अधिकार एवं उसकी स्वतन्त्रता दी है (9/90-91)। विधवा को पुनर्विवाह का भी अधिकार दिया है, साथ ही सन्तानप्राप्ति के लिए नियोग की भी छूट है (9/176, 9/56-63)। उन्होंने विवाह को कन्याओं के आदर-स्नेह का प्रतीक बताया है, अतः विवाह में किसी भी प्रकार के लेन-देन को अनुचित बताते हुए बल देकर उसका निषेध किया है (3/51-54)। स्त्रियों के सुखी जीवन की कामना से उनका सुझाव है कि जीवनपर्यन्त अविवाहित रहना श्रेयस्कर है, किन्तु गुणहीन, दुष्ट पुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए (9/89)।²

1. माता-पितृभ्यां भार्यया, दुहित्रा विवादं न समाचरेत्। (4/180)

मातरं पितरं जायां आक्षारयन् शतं दण्डयः। (8/180)

2. काममामरणात् तिष्ठेत् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।

न चैवेनां प्रयच्छेत् गुणहीनाय कर्हिचित्॥ (9/89)

विश्व के सभी धर्मों में से केवल वैदिक धर्म में और सभी देशों में से भारतवर्ष में स्त्रियों को पुरुष के कार्यों में जो सहभागिता प्राप्त है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। यहाँ का कोई भी धार्मिक, सामाजिक या पारिवारिक आयोजन-अनुष्ठान स्त्री को साथ लिये बिना सम्पन्न नहीं होता। यही मनु की मान्यता है। इसलिए धर्मानुष्ठान के प्रबन्ध का दायित्व स्त्री को सौंपा है और उसकी सहभागिता से ही प्रत्येक अनुष्ठान करने का निर्देश दिया है (9/11, 28, 96)।¹ वैदिक काल में स्त्रियों को वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत, यज्ञ आदि के सभी अधिकार प्राप्त थे। वे ब्रह्मा के पद को सुशोभित करती थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाएँ बनती थीं। वेदों को धर्म में परम प्रमाण मानने वाले ऋषि मनु वेदानुसार स्त्रियों के सभी धार्मिक अधिकारों तथा उच्च शिक्षा के समर्थक हैं। तभी उन्होंने स्त्रियों के अनुष्ठान मन्त्रपूर्वक करने और धर्मकार्यों का अनुष्ठान स्त्रियों के अधीन घोषित किया है (2/4; 3/28)।²

‘लेडिज फस्ट’ की सभ्यता के प्रशंसकों को यह पढ़कर और अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए कि मनु ने सभी को यह निर्देश दिया है कि ‘स्त्रियों के लिए पहले रास्ता छोड़ दें।’³ नवविवाहितों, कुमारियों, रोगिणी, गर्भिणी, वृद्धा आदि स्त्रियों को पहले भोजन कराके फिर पति-पत्नी को साथ भोजन करने का कथन है (2/138; 3/114, 116)। मनु के ये सब विधान स्त्रियों के प्रति सम्मान और स्नेह के द्योतक हैं तथा उच्च सभ्यता के प्रतीक हैं।

यहाँ प्रसंगवश यह स्पष्ट कर देना उपयोगी रहेगा कि मनु गुणों के प्रशंसक हैं और अवगुणों के निन्दक हैं। गुणियों को सम्मानदाता हैं, अवगुणियों को दण्डदाता हैं। यदि उन्होंने गुणवती स्त्रियों को पर्याप्त सम्मान दिया है, तो अवगुणवती और कर्तव्यपालन न करने वाली स्त्रियों की निन्दा भी की है और उनके लिए दण्ड का विधान किया है। मनु की एक

1. अपत्यं धर्मकार्याणि”दाराधीनः। (9/28)

शौचे धर्मेऽनपक्त्यां च परिणाहचस्य वेक्षणे। (9/11)

2. मंगलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः।

प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम्॥ (5/152)

3. स्त्रियाः”पंथा देयः। (2/138)

विशेषता और है, वह यह है कि वे नारी की असुरक्षित तथा अमर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं हैं और न ही उन बातों का समर्थन करते हैं जो परिणाम में अहितकर हैं। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों को चेतावनी देते हुए सचेत किया है कि वे स्वयं को पिता, पति, पुत्र आदि की सुरक्षा से अलग न करें, क्योंकि एकाकी रहने से दो कुलों की निन्दा होने की आशंका रहती है (5/149; 9/5-6)। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनु स्त्रियों की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं। इसका निहितार्थ यह है कि नारी की सर्वप्रथम सामाजिक आवश्यकता है 'सुरक्षा' की। वह सुरक्षा उसे चाहे शासन-कानून प्रदान करे अथवा कोई पुरुष या स्वयं का सामर्थ्य। भोगवादी आपराधिक प्रवृत्तियाँ उसके स्वयं के सामर्थ्य को सफल नहीं होने देतीं! उदाहरणों से पता चलता है कि शस्त्रधारिणी डाकू स्त्रियों तक को भी पुरुष-सुरक्षा की आवश्यकता रही है। मनु के उक्त कथन को आज की राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखना भी सही नहीं है। आज देश में एक शासन है और कानून उसका रक्षक है। फिर भी हजारों नारियाँ प्रतिदिन अपराधों की शिकार होती हैं और कुछ जीवन की बर्बादी की राह पर चलने को विवश हैं। प्रतिदिन बलात्कार, नारी-हत्या, वेश्याकर्म के लिए विवश करना जैसे जघन्य अपराधों की हजारों घटनाएँ होती रहती हैं। जब राजतन्त्र में उथल-पुथल होती रहती है, कानून शिथिल पड़ जाते हैं, रक्षक कोई अपना नहीं होता, तब क्या परिणाम होगा? उस स्थिति की कल्पना करके मनु के वचनों के महत्व को आंककर देखना चाहिए। तब मानना पड़ेगा कि वे शतप्रतिशत सही हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से हमें यह स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति की व्यवस्थाएँ स्त्री-शूद्रविरोधी नहीं हैं, वे न्यायपूर्ण और पक्षपातरहित हैं। मनु ने कुछ भी ऐसा नहीं कहा जो निन्दा अथवा आपत्ति के योग्य हो।

बिना भेदभाव सबके लिए शिक्षा प्राप्ति के पक्षधर महर्षि मनु— मनु आदि युग के 'सबके लिए शिक्षा और सबके लिए अनिवार्य शिक्षा के समर्थक एवं प्रेरक महर्षि थे। इस तथ्य की पुष्टि मनुस्मृति के एक महत्वपूर्ण अन्तःप्रमाण से हो जाती है। इस प्रमाण के समक्ष कोई दूसरा प्रमाण महत्वपूर्ण नहीं है। पाठक तटस्थ भाव से इस प्रमाण पर चिन्तन करें

और फिर देखें कि मनु शिक्षा के कितने प्रबल पक्षधर थे। मनु पृथ्वी के (विश्व के) सभी मानवों का शिक्षाप्राप्ति के लिए खुला आह्वान करते हुए कहते हैं—

एतददेशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (2/20)

अर्थात् ‘पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी मनुष्यो! आओ, और इस देश में उत्पन्न विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मणों से अपने-अपने कर्तव्यों, आचरणों अथवा अभीष्ट विषयों की शिक्षा प्राप्त करके विद्वान बनो, सुशिक्षित नागरिक बनो।’

महर्षि मनु का कितना महान आह्वान है! इसमें न ब्राह्मण, शूद्र आदि वर्णों का भेद है, न आर्य-अनार्य का भेद है, न स्वदेशी-विदेशी का अन्तर और न स्त्री-पुरुष का भेदभाव है। वे मानव मात्र का समान भाव से आह्वान कर रहे हैं। क्योंकि वे शिक्षा के महत्व को समझते हैं कि शिक्षा के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता, वह उन्नति नहीं कर सकता, परिवार-समाज का कल्याण नहीं हो सकता, राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता, इसलिए मनु के मत में शिक्षा का सर्वोच्च महत्व था और सभी के लिए शिक्षा आवश्यक थी। उसकी ओर से शिक्षा प्राप्ति के लिए कोई बन्धन नहीं है, बस, कोई भी शिक्षा प्राप्ति का इच्छुक होना चाहिए, चाहे वह पृथ्वी के किसी भाग का निवासी हो, और कोई भी हो। शिक्षा के प्रति इतना उदार भाव रखने वाले राजर्षि से क्या यह आशा की जा सकती है कि वह किसी को शिक्षा से वज्ज्ञत करेगा? कदापि नहीं। यदि कोई शिक्षा से वज्ज्ञत करने के या प्रतिबन्ध डालने के वचन वर्तमान मनुस्मृति में पाये जाते हैं तो वे उक्त आह्वान करने वाले मनु स्वायम्भुव के नहीं हो सकते। क्योंकि ऋषियों या विद्वानों के कथनों में परस्पर विरोध नहीं होता। हाँ, वे किसी परवर्ती स्वार्थी और पक्षपाती जातिवादी के कथन हो सकते हैं, जो स्वार्थपूर्ति के लिए प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं।

महर्षि मनु शिक्षा को सर्वोच्च महत्व देते थे और वर्णव्यवस्था में उसे आवश्यक मानते थे। इसका एक ठोस प्रमाण वह है जहाँ शिक्षा प्राप्ति न करने वालों के विषय में मनु ने कठोर विधान किया है। मनु कहते हैं कि

अधिकतम निर्धारित आयुसीमा तक भी जो बालक या युवक शिक्षा प्राप्त्यार्थ उपनयन संस्कार नहीं करायेगा, वह आर्य वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत हो जायेगा। उसके वैधानिक अधिकार नहीं रहेंगे (मनु० 2/38-40)। यह सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का आदेश है। ऐसा उदार महर्षि किसी को शिक्षा से वञ्चित करने का विचार भी नहीं कर सकता।

ऊपर कुछ मान्यताओं को मनुस्मृति के श्लोकों के आधार पर ही दिग्दर्शन कराया गया है। इसी प्रकार अन्य अनेक मान्यताएँ हैं जिनका मौलिक रूप मनुस्मृति में प्राप्त है। ये पूर्वापर प्रसंग से सम्बद्ध मान्यताएँ हैं। इनके विपरीत पूर्वापर प्रसंग से असम्बद्ध जो मान्यताएँ हैं वे मनु की मौलिक नहीं हैं। समय-समय पर बदली हुई सामाजिक व्यवस्था और अवधारणा के अनुसार उनको तत्कालीन लोगों ने मनुस्मृति में प्रक्षिप्त किया है, अतः उनको मनु की मौलिक मान्यताएँ नहीं कहा जा सकता। उनसे मनुस्मृति और मनुस्मृति-कालीन सभ्यता-संस्कृति, इतिहास और व्यवस्था का स्वरूप विकृत और परिवर्तित हुआ है, अतः वे महर्षि मनु के नाम पर ग्राह्य नहीं हैं।